जप-साधना

□ मुनिप्रवर कुन्दकुन्दविजयजी

कोई भी विज्ञ मानव जब किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति करता है तब उसे उस कार्य के सम्बन्ध में जानने की जिज्ञासा होती है। जिज्ञासा ही ज्ञान-प्राप्ति का मुख्य द्वार है। जिज्ञासा में हार्दिक नम्रता अपेक्षित है। हार्दिक नम्रता से सुपात्र आत्मा अगम्य अलौकिक तत्त्वों को सम्यक् प्रकार से समझने में समर्थ बनता है। दैवी संपत्ति की सभी बातें केवल बुद्धि से समझी नहीं जा सकतीं। उसके लिए उच्च तत्त्वों के प्रति समर्पित होने की आवश्यकता है।

यह परम सौभाग्य की बात है कि वर्तमान युग में नमस्कार महामन्त्र के जाप के सम्बन्ध में कितने ही सुपात्र व्यक्तियों की विशेष जानने की भव्य भावना जाग्रत हो रही है। उसी दृष्टि से हम यहाँ कुछ चिन्तन प्रस्तुत कर रहे हैं।

सर्वप्रथम हमें यह चिन्तन करना है कि नमस्कार महामन्त्र का जाप किसलिए किया जाना चाहिए। अनेकानेक अनुभवी तत्त्वदर्शियों ने इसकी महिमा-गरिमा का गौरव-गान किसलिए किया है ? समाधान है कि हमें जो मानव-जन्म मिला है उसका अत्यधिक महत्व है। यह जीवन खाने-पीने, ऐश-आराम के लिए नहीं है और न ही धन को एकत्रित करने के लिए है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन की वृत्तियाँ तो पशुओं में भी पायी जाती हैं। मानव जीवन का लक्ष्य है आत्मा से परमात्मा बनना, नर से नारायण बनना और इन्सान से भगवान बनना। अन्य किसी भी जीवयोनि में वह सामर्थ्य नहीं है जो भगवान बन सके। भगवान बनने का सामर्थ्य केवल मानव को ही प्राप्त है।

इसी दृष्टि से मूर्धन्य मनीषियों ने जीवों की भूमिका और योग्यता की दृष्टि से आत्मविकास के अनेक उपाय बताये हैं। आत्मविकास के सभी कारणों के मूल में नमस्कार महामन्त्र रहा हुआ है। नमस्कार महामन्त्र के सहारे ही जीवन का सही विकास हो सकता है और नमस्कार महामन्त्र की आराधना व साधना में आगे बढ़ते हुए क्रमशः गुणस्थानों को प्राप्त कर अन्त में जीव परमात्म-पद प्राप्त करने में समर्थ होता है।

अनुभवी सद्गुरु के द्वारा विधिपूर्वक प्राप्त नमस्कार महामन्त्र का पुनः-पुनः स्मरण करना 'जाप' है। इस जाप की संख्या में जैसे-जैसे विकास होता है वैसे-वैसे उसके साक्षात् प्रभाव का अनुभव होता है।

यह सत्य तथ्य है कि धर्म का वास्तविक प्रारम्भ नमस्कार से होता है।[1] जब हम अपने से श्रेष्ठ सद्गुणियों को वन्दन करने की वृत्ति वाले बनते हैं तब हमारी आत्मा पर लगी हुई पाप की कालिमा कम होने लगती है, जिससे हम में धर्म को ग्रहण करने की पात्रता आती है। धर्म अमृत है। जब तक हमारा अन्तःकरण राग-द्वेष, ईर्ष्या-असूया, अहंकार आदि दोषों से परिपूर्ण रहेगा तब तक वह अमृत उसमें प्रविष्ट भी नहीं हो सकता। घड़े में शक्कर डालनी है तो सर्वप्रथम उसे खाली करना होगा, उसमें जो कूड़ा-कचरा है उसे निकालना होगा। तभी उसमें शक्कर डाली जा सकेगी। इसी प्रकार अन्तःकरण में से विकार रूपी कूड़े-कचरे को निकालेंगे तभी नमस्कार मंत्ररूप शक्कर उसमें भर सकेंगे। अनन्तगुणों के पुञ्ज अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु भगवन्तों को शुद्ध भाव से हम प्रणाम करते हैं तब हमारे हृदय में धर्म प्रविष्ट होता है। अतः सर्वप्रथम नमस्कार करने का विधान है। अचिन्त्य और अनन्त शक्ति से परिपूर्ण परमेष्ठी के प्रति विनम्र बनकर जीव भक्तियुक्त परिणाम वाला बनता है, जीव की भक्ति और परमात्म-तत्त्व की अचिन्त्य शक्ति इन दोनों का सुमेल हो जाने से आत्मा में अपूर्व जागृति आती है।

विकास क्रम की इतनी अत्यधिक भूमिकाएँ हैं कि हम उन्हें संख्या की परिधि में नहीं बाँध सकते। आत्मा चाहे किसी भी भूमिका में हो लेकिन जब वह नमस्कार महामन्त्र से वासित अन्तःकरण वाला होता है, तब वह अपनी वर्तमान भूमिका से क्रमशः उच्चतर पद को प्राप्त करता जाता है अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान से विकास करता हुआ आत्मा चतुर्दश गुणस्थान तक पहुँच जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे अन्न भण्डार में पड़े हुए अन्न में अंकुर प्रस्फुटित नहीं होता, किन्तु वही अन्न जब कृषक खेत में वपन करता है, उसे पानी, खाद, हवा और प्रकाश आदि सामग्री की सम्प्राप्ति होती है तो वह नन्हा-सा बीज विराट पौधे का रूप धारण कर लेता है और अगणित अन्न के दाने प्रदान करता है। हमारे अन्तःकरण में भी अनन्त सद्गुणों के बीज भरे पड़े हैं। जब तक योग्य सामग्री उपलब्ध नहीं होती तब तक वे प्रकट नहीं हो सकते। हमारे अन्तःकरण में नमस्कार महामन्त्र के प्रति हार्दिक सद्भावना, भक्ति जागृत होगी तब उन सद्गुणों को विकसित होने का अवसर प्राप्त होगा। नमस्कार महामन्त्र के जाप से आत्मा में रहे हुए अनन्त सद्गुणों को प्रकट होने का अवसर मिलता है और अन्त में जीव सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट कर अनन्त आनन्दरूप मोक्ष को प्राप्त करता है। एतदर्थ ही नमस्कार महामन्त्र की चूलिका में बताया है कि पंच परमेष्ठी को किया गया नमस्कार सर्वपापों को नष्ट करता है और विश्व के सर्वमंगल-भूत पदार्थों में वह सबसे श्रेष्ठ मंगलरूप है। इस विराट विश्व में जितने भी दुःख, क्लेश, अशांति, रोग, शोक आदि कष्ट हैं वे सभी पाप से उत्पन्न होते हैं। पाप के नष्ट होने से पाप के फलरूप दुःखों का भी स्वतः नाश हो जाता है और अन्त में आत्मा का आनन्द ही अवशेष रहता है।

नियमित समय पर निरन्तर जाप का अभ्यास करने से साधक को ऐसा अनुभव होने लगता है कि जिन दोषों की पहले प्रधानता थी वे क्रमशः क्षीण हो रहे हैं; और सद्गुण विकसित हो रहे हैं। नमस्कार महामन्त्र के जाप से मन में अपार प्रसन्नता पैदा होती है जो प्रसन्नता कभी भी नष्ट नहीं होती।[२] जब मानव के मन में प्रसन्नता अंगड़ाइयाँ लेती है तब उसके चित्त की संक्लिष्टता नष्ट हो जाती है। संसार के अधिकांश प्राणी मन की प्रसन्नता के अभाव में ही विविध प्रकार के दुःखों का अनुभव कर रहे हैं। नमस्कार महामन्त्र के जाप से जो प्रसन्नता समुत्पन्न होती है उस प्रसन्नता का वर्णन नहीं किया जा सकता। उसे जंगल में भी मंगल प्रतीत होता है और चक्रवर्ती सम्राट से भी अधिक वह आनन्द का अनुभव करता है। जहाँ मन में प्रसन्नता होती है वहाँ सुख-शांति की बंशी बजने लगती है।

मानव-मन के दो मुख्य दोष हैं—पहला, अप्रसन्नता और दूसरा, चंचलता। जब मानव के अन्तर्मानस में स्नेह सद्भावना का समुद्र ठाठें मारने लगता है तो अप्रसन्नता स्वतः ही नष्ट हो जाती है। वह स्वार्थ से हटकर परमार्थ की ओर प्रवृत्त होता है। परमेष्ठी के जाप में वह सामर्थ्य है कि अप्रसन्नता उसके सामने आ ही नहीं सकती। उसके जीवन में राग-द्वेषरूपी दोष नष्ट हो जाने से सदा प्रसन्नता का ही साम्राज्य रहता है। मन का दूसरा दोष चंचलता है। बन्दर की तरह मन भी एक क्षण स्थिर नहीं रहता। उसे ज्यों-ज्यों स्थिर करने का प्रयास किया जाता है त्यों-त्यों वह अधिक चंचल बनता जाता है। नमस्कार महामन्त्र के जाप से साधक के अन्तर्मानस में ये विचार अंगड़ाइयाँ लेने लगते हैं कि सांसारिक पदार्थ सुख के कारण नहीं किन्तु दुःख के कारण हैं। अतः उसकी मिथ्या आसक्ति उन पदार्थों से हटने लगती है, परिणामस्वरूप मन स्थिर होने लगता है। अतः नमस्कार के जाप का अभ्यास बढ़ाना चाहिए।

शांतचित्त से बहुमानपूर्वक प्रातः व सन्ध्या के समय एकान्त शान्त स्थान पर बैठकर प्रसन्नमन से जाप करना चाहिए। जाप करते समय ऊन के आसन पर बैठना चाहिए। आसन का रंग श्वेत होना चाहिए। माला भी श्वेत सूत की होनी चाहिए। वस्त्र भी रंग-बिरंगे न होकर श्वेत, शुद्ध व खादी के होने चाहिए। श्वेत वर्ण शुक्लध्यान का प्रतीक है। शांति के कार्यों के लिए आचार्यों ने विशेषरूप से उसका विधान किया है। जाप करते समय मुँह पूर्व दिशा या उत्तर दिशा की तरफ रखना चाहिए। कुछ साधकों को साधना के प्रारम्भ में बाह्य आलंबन की आवश्यकता होती है किन्तु कुछ समय के पश्चात् शरीर में ही हृदयकमल आदि स्थानों में कल्पना से नमस्कार के अक्षरों की संस्थापना करके मन को एकाग्र किया जा सकता है।

जाप करते समय शरीर को पूर्ण स्थिर रखना चाहिए। मेरुदण्ड सीधा रहे। सुखासन, पद्मासन, पर्यंकासन किसी भी आसन का उपयोग किया जा सकता है, पर यह ध्यान रहे कि उस आसन से बैठा जाय जिससे कष्ट न हो और दीर्घकाल तक सुखपूर्वक उस आसन से बैठा जा सके। जाप करते समय साधक का ध्यान नमस्कार महामन्त्र के अक्षरों पर होना चाहिए। यदि मन में किसी प्रकार का संक्लेश है तो प्रारम्भ में सुमधुर राग से भाष्यजप करना चाहिए। उसके बाद उपांशुजप करना चाहिए और उसके बाद मानसजप। जाप में एकाग्रता साधने के लिए यह पद्धति अत्यधिक श्रेष्ठ है। मानसजप के कुछ समय पश्चात् नेत्रों को बन्द कर मन को हृदयकमल पर स्थापित करना चाहिए। उस समय यह कल्पना की जा सकती है कि हृदय एक विकसित कमल के समान है। उस कमल की आठ पंखुडियाँ हैं। उस कमल के मध्य में एक कर्णिका है। उस कर्णिका में देदीप्यमान ज्योतिस्वरूप अरिहन्त भगवान विराजमान हैं।[३] उस कर्णिका में "नमो अरिहंताणं" इस प्रकार हीरे की तरह चमचमाहट करते हुए श्वेतवर्ण के सात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्षर हैं और आठ पंखुड़ियों पर "नमो सिद्धाणं" "नमो आयरियाणं" "नमो उवज्झायाणं" "नमो लोए सव्वसाहूणं" "नमो नाणस्स" "नमो दंसणस्स" "नमो चरित्तस्स" "नमो तवस्स" इन पदों की संस्थापना का ध्यान करना चाहिए।

जाप व ध्यान में कभी भी शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। धैर्य से आगे बढ़ना चाहिए। प्रारम्भ में पाँच-दस मिनट का समय ही पर्याप्त है। ज्यों-ज्यों आनन्द की अभिवृद्धि होगी त्यों-त्यों समय स्वतः ही बढ़ जायेगा। यह सत्य है कि प्रारंभिक स्थिति में मन जाप में जैसा चाहिए वैसा नहीं लगता किन्तु नियमित व सतत अभ्यास से मन पूर्ण-रूप से स्थिर हो जाता है। और एक दिन वह स्थिति आ जाती है कि निरन्तर बिना प्रयास के भी जाप चलता रहता है जिसे महर्षियों ने अजपाजप कहा है। एतदर्थ ही आचार्यों ने कहा हैं—"**जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिर्न संशयः।**"

विधिवत् जाप को प्रारम्भ करने से तीव्र गति से प्रगति होने लगती है। मन की अत्यधिक प्रसन्नता से क्लेश दूर हो जाते हैं। क्लेशयुक्त मन ही संसार है और क्लेशरहित मन ही मोक्ष है। अज्ञानी मानव संपत्ति में सुख मानता है, किन्तु संपत्ति विपत्ति का मूल है। नमस्कार महामन्त्र का स्मरण आत्मदशा का स्मरण है, आत्मविकास का प्रथम सोपान है और जीवन का चरम विकास भी। कल्पना कीजिए, एक महाविद्यालय है। उसमें प्रारंभिक वर्णमाला का अभ्यास भी प्रारम्भ किया जाता है और अंतिम पदवी समारोह भी। इसी तरह धर्म का प्रारम्भ भी नमस्कार महामन्त्र से ही होता है और पूर्णाहुति भी नमस्कार महामंत्र से ही होती है। अरिहन्त भगवान भी "नमो सिद्धाणं" का स्मरण करते हैं। नमस्कार महामन्त्र का स्मरण ही भावजीवन है और उसका विस्मरण ही भावमृत्यु है। नमस्कार महामन्त्र का स्मरण ही सच्ची संपत्ति है क्योंकि हमारी आत्मा में ही परमात्म-तत्त्व रहा हुआ है। आत्मा के आवरण को हटाने के लिए और स्व-स्वरूप का संदर्शन करने के लिए नमस्कार महामन्त्र का जाप अपेक्षित है।

हम पहले बता चुके हैं कि नमस्कार महामन्त्र का जाप करने वाले साधक को सतत अभ्यास करना चाहिए। सामान्य साइकिल, मोटर आदि वाहन चलाने जैसी प्रवृत्ति के लिए भी सतत अभ्यास आवश्यक है। विश्वविश्रुत महान् योद्धा, जादूगर, जो अपने चमत्कार से जनमानस को चमत्कृत कर देते हैं वे एक दिन के अभ्यास से नहीं, किन्तु दीर्घ काल के सतत अभ्यास से ही ऐसा करने में सक्षम बनते हैं। उसी प्रकार साधक को भी निरन्तर अभ्यास अपेक्षित है। उसे धैर्यपूर्वक अत्यन्त सम्मान के साथ नमस्कार महामन्त्र का जप करना चाहिए। जप-साधना से जीवन में पवित्रता और निर्मलता आती है और यह साधक के लिए बहुत ही आवश्यक है।

सन्दर्भ तथा सन्दर्भ स्थल—

१ धर्म प्रति मूलभूता वन्दना।
—श्री ललित विस्तरा

२ चित्तरत्नमसंक्लिष्टमान्तरं धनमुच्यते।
—श्री अष्टप्रकरण

३ जेह ध्यान अरिहंत को तेहिज आतम ध्यान।
फेर कुछ इणमें नहीं एहिज परम निधान॥

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org